पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में

आपराधिक विविध वाद संख्या 38182/2016

थाना कांड संख्या–170 वर्ष–2014 थाना–करागढ़ जिला–रोहतास से उत्पन्न

= =

अजय कुमार सिंह पिता शैलेश्वर प्रसाद सिंह, निवासी वृंदावन अपार्टमेंट, फेज–2, ए–502, मलाही पाकर, कंकड़बाग, थाना–कंकड़बाग, जिला–पटना।

.... याचिकाकर्ता/ओं

बनाम

1. बिहार राज्य
2. अरविंद कुमार पिता रमेश सिंह निवासी गाँव–मोहनिया, थाना–करगहर, जिला–रोहतास।

.... विपक्षी/ओं

= =

उपस्थिती:

याचिकाकर्ताओं के लिए : श्री रजनी कांत सिंह, अधिवक्ता

विपक्षी सं. 2 के लिए : श्री नरेंद्र कुमार, अधिवक्ता

श्री बबन प्र० सिंह, अधिवक्ता

विरोधी पक्ष/दलों के लिए : श्री मनीष कुमार 2, एपीपी

= =

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 239 – उन्मोचन – याचिका अस्वीकृत किया गया – याचिका कर्त्ता दो लाख रूपये आर.टी.जी.एस से प्राप्त किया – पुलिस अन्वेषण के बाद आरोप पत्र भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धाराएँ 406 और 420 के अंतर्गत समर्पित किया – श्योराज सिंह अहलावत के मार्गदर्शक सिद्धांत का अनुसरण/पालन करते हुए, विवादित आदेश कानून की नजर में गलत नहीं है – विद्वान विचारण न यायालय ने कोई भी गलती नहीं की है याचिकाकर्ता की उन्मोलन याचिका को प्रतिक्षेपण/अस्वीकृत करने में – आवेदन खारिज किया जाता है। (पारा 9 और 10)

(2013) 11 एस.सी.सी 476 – निर्भर किया गया

(1992) अनुपूरक (1) एस.सी.सी 335 – संदर्भित किया गया

पटना उच्च न्यायालय का निर्णय आदेश

= =

समक्षः–माननीय न्यायमूर्ति श्री चंद्र शेखर झा

मौखिक निर्णय

तारीख : 16–04–2024

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान रद्द करने वाली याचिका को 2014 के करगहर थाना कांड संख्या 170 के संबंध में पारित दिनांक 27.06.2016 के आदेश को रद्द करने के लिए प्राथमिकता दी गई है, जो परीक्षण संख्या–590/2016 से उत्पन्न हुआ था, जहां विद्वान अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट–X, सासाराम, रोहतास ने याचिकाकर्ता को डिस्चार्ज करने के लिए आ.दं.प्र. की धाा 239 के तहतर दायर याचिका दिनांक 25.01.2016 को खारिज कर दिया था।

3. विपक्षी संख्या 2 वर्तमान कार्यवाही में शामिल होता है।

4. एफ़. आई. आर. के अवलोकन से मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि एक व्यक्ति अरबिंद कुमार ने करगहर थाना के प्रभारी अधिकारी के सामने अपना लिखित बयान दर्ज किया जिसमें उल्लेख किया गया था कि उसे अपने पैतृक गांव में चावल मिल स्थापित करने के लिए पंजाब नेशनल बैंक से ऋण लेना था और अक्टूबर 2013 के महीने में वह याचिकाकर्ता के संपर्क में आया जिसने उसे आश्वासन दिया कि वह पंजाब नेशनल बैंक, पटना से ऋण दिलाने में उसकी मदद करेगा और इसके लिए उसने रु० 95, 000/– उस समय दिए। सूचक द्वारा अपने लिखित आवेदन में यह भी उल्लेख किया गया है कि याचिकाकर्ता ने रुपये 2,00,000/–हस्तांतरित करने के लिए भी कहा है। उसके बैंक खाते में और वह याचिकाकर्ता के खाते में आर. टी. जी. एस. (रियल टाइम ग्रॉस सेटलमेंट) के माध्यम से स्थानांतरित किया गया था। और जब याचिकाकर्ता ने 15.05.2014 तक कोई जानकारी नहीं दी तो उसने एक प्लीडर नोटिस भेजा, जिसमें उसने उक्त राशि वापस करने से इनकार कर दिया और ऋण प्राप्त करने में उसकी मदद नहीं की।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता ने रु० 2,00,000/– प्रतिवादी सं. 2 के पिता को और रुपये 2,00,000/– की उक्त देनदारियों का निर्वहन करने के लिए। उपरोक्त राशि प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा उनके बैंक खाते में स्थानांतरित की गई थी, जबकि 95, 000/– रुपये नकद देने का आरोप लगाया गया था और चावल मिल की स्थापना के लिए पंजाब नेशनल बैंक के साथ बैंक ऋण प्राप्त करने की पूरी कहानी विशुद्ध रूप से एक काल्पनिक कहानी है जो आरोपों को

बढ़ाती है। यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि रुपये का कोई भुगतान नहीं किया गया है। प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा याचिकाकर्ता को 95,000/– दिए गए थे। यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि किसी भी मामले में यह वसूली का मामला है, जो ऋण विवाद से उत्पन्न होता है, जिसके लिए नागरिक अधिकार क्षेत्र के तहत उचित उपाय उपलब्ध है, जहां वर्तमान आपराधिक अभियोजन अप्रत्यक्ष और गुप्त उद्देश्य के साथ लाया गया था और इस तरह यह एक उपयुक्त मामला जिसे रद्द किया जाना है।

6. तर्क का समापन करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने **हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य के मामले में** माननीय सर्वोच्च न्यायालय की कानूनी प्रतिवेदन पर भरोसा किया, जो **1992 के अनुपूरक (1) उच्च न्यायालय** के मामलों **335 में प्रतिवेदित की गई थी।**

7. प्रतिवादी संख्या– 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा विधिवत सहायता प्राप्त विद्वान लोक अभियोजक ने आवेदन का विरोध करते हुए बताया की 2,00,000/–रुपये की राशि सीधे प्रतिवादी संख्या 2 के बैंक खाते में स्थानांतरित किया गया था। यह प्रस्तुत किया जाता है कि बयान में कोई प्रथम दृष्टया, सबूत नहीं है कि कभी भी रु० 2,00,000/– याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 के पिता को भुगतान किया गया था और यह विशुद्ध रूप से काल्पनिक कहानी है जिसके लिए प्रतिवादी संख्या 2 पर जिम्मेदारी है। प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने **शिवराज सिंह अहलावत और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की कानूनी रिपोर्ट पर भरोसा किया, जैसा कि **(2013) 11 एससीसी 471** में बताया गया है।

8. **शिवराज सिंह अहलावत (ऊपर)** के मामले में कंडिका संख्या– 15, 16, 17, 18, 19 और 20 को पुनः प्रस्तुत करना उचित होगा, जो इस निम्नानुसार हैः–

> **15.** इस न्यायालय ने आरोप तय करने या निर्वहन का निर्देश देने के चरण में न्यायालय द्वारा अपनाई जाने वाली कानूनी स्थिति और दृष्टिकोण को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट कियाः (ओंकार नाथ मामला [(2008) 2 एस. सी. सी. 561: (2008) 1 एस. सी. सी. (आ.) 507], एस. सी. सी. पृष्ठ 565, कंडिका 11)
>
> *"11.* यह सामान्य बात है कि आरोप तय करने के चरण में न्यायालय को यह पता लगाने के लिए अभिलेख पर सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन करने की आवश्यकता होती है कि क्या उनसे सामने आने वाले तथ्य, उनके अंकित मूल्य पर लिए जाने पर, कथित अपराध का गठन करने

वाले सभी तत्वों के अस्तित्व का खुलासा करते हैं। उस स्तर पर, अदालत से रिकॉर्ड पर सामग्री के संभावित मूल्य में गहराई से जाने की उम्मीद नहीं की जाती है। *जिस बात पर विचार करने की आवश्यकता है वह यह है कि क्या यह मानने के लिए कोई आधार है कि अपराध किया गया है और आरोपी को दोषी ठहराने के लिए कोई आधार नहीं बनाया गया है। उस पर ऐसी सामग्री जो न्यायालय को कथित अपराध का गठन करने वाले* ***तथ्यात्मक तत्वों*** *के अस्तित्व के बारे में एक अनुमानित राय बनाने के लिए प्रेरित करती है, उस अपराध के संबंध में अभियुक्त के खिलाफ आरोप तैयार करने को उचित ठहराएगी।"*

16. उपरोक्त दृष्टिकोण का समर्थन इस न्यायालय द्वारा *कर्नाटक राज्य बनाम एल. मुनिस्वामी* [(1977) 2 एससीसी 699 में दिए गए पहले के फैसलों से किया गया थाः 1977 एस. सी. सी. (सी. आर. आई) 404: 1977 क्रि. एल.जे. 1125], *महाराष्ट्र राज्य बनाम सोमनाथ थापा* [(1996) 4 एससीसी 659:1996 एस. सी. सी. (सी. आर. आई) 820:1996 सी. आर. आई. एल. जे. 2448] और *म.प्र. राज्य बनाम मोहनलाल सोनी* [(2000) 6 एससीसी 338:2000 एस. सी. सी. (सी. आर. आई) 1110:2000 क्रि एलजे 3504]। *सोमनाथ मामले में* [(1996) 4 एससीसी 659:1996 एस. सी. सी. (सी. आर. आई) 820:1996 सी. आर. आई. एल. जे. 2448] कानूनी स्थिति का सारांश इस प्रकार दिया गया थाः(एस. सी. सी. पी. 671, पैरा 32)

"*32.* ... यदि अभिलेख पर सामग्री के आधार पर, एक अदालत इस निष्कर्ष पर आ सकती है कि अपराध करना एक संभावित परिणाम है, तो आरोप तय करने का मामला मौजूद है। इसे अलग तरह से रखने के लिए, अगर अदालत को लगता है कि आरोपी [**एड.**:"हो सकता है" और "हो सकता है" शब्दों पर मूल में जोर दिया गया है।] अपराध को अंजाम देने के लिए यह आरोप तय कर सकता है, हालांकि दोषसिद्धि के लिए निष्कर्ष यह होना आवश्यक है कि अभियुक्त के पास [**एड** "हो सकता है" और "हो सकता है" शब्दों पर मूल में जोर दिया गया है।] अपराध को अंजाम दिया। *यह*

स्पष्ट है कि आरोप तय करने के चरण में, अभिलेख पर सामग्री के संभावित मूल्य में नहीं जाया जा सकता है; अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर लाई गई सामग्री को उस स्तर पर सही माना जाना चाहिए।"

17. *मोहनलाल मामले में* भी [(2000) 6 एस. सी. सी. 338:2000 एस. सी. सी. (सी. आर. आई) 1110:2000 सी. आर. आई. एल. जे. 3504] इस न्यायालय ने कई पिछले फैसलों का उल्लेख किया और कहा कि आरोप तय करने के लिए अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण के बारे में न्यायिक राय यह है कि ऐसे आरोप बनाए जाने चाहिए यदि अदालत को प्रथम दृष्टया लगता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है। अदालत को सबूत की सराहना करने की आवश्यकता नहीं है जैसे कि यह निर्धारित करने के लिए कि क्या प्रस्तुत सामग्री आरोपी को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त थी। मोहनलाल मामले [(2000) 6 एस. सी. सी. 338 में निर्णय से निम्नलिखित अंशः2000 एस. सी. सी. (सी. आर. आई) 1110: 3504] इस संबंध में उपयुक्त हैः(एस. सी. सी. पी. 342, पैरा 7)

"*7.* स्पष्ट न्यायिक दृष्टिकोण यह है कि आरोप तय करने के चरण में, अदालत को प्रथम दृष्टया विचार करना होगा कि क्या आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है। अदालत को यह निष्कर्ष निकालने के लिए साक्ष्य की सराहना करने की आवश्यकता नहीं है कि क्या प्रस्तुत की गई सामग्री अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त है या नहीं।"

18. *उड़ीसा राज्य बनाम देवेंद्र नाथ पाधी* [(2005) 1 एस. सी. सी. 568: 2005 एस. सी. सी. (आप.) 415] यह न्यायालय इस बात पर विचार कर रहा था कि क्या निचली अदालत आरोप तय करते समय अभियुक्त द्वारा दायर सामग्री पर विचार कर सकती है। इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित शब्दों में इस प्रश्न का नकारात्मक उत्तर दिया गया थाः (एस. सी. सी. पृष्ठ 577 और 579, पैरा 18 और 23)

"18. हम उपरोक्त तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। अनुच्छेद 14 और 21 पर निर्भरता गलत है।... इसके अलावा, आरोप तय

करने के चरण में रोविंग और मछली पकड़ने की जांच की अनुमति नहीं है। यदि अभियुक्त के तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है, तो तैयार करने के चरण में एक लघु–परीक्षण होगा। *यह संहिता के उद्देश्य को विफल कर देगा। यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि आरोप तय करने के चरण में अभियुक्त का बचाव नहीं किया जा सकता है। अभियुक्त के लिए विद्वान अधिवक्ता के तर्क को स्वीकार करने का अर्थ होगा अभियुक्त को आरोप तय करने के चरण में अपना बचाव करने और उस स्तर पर उसकी जांच करने की अनुमति देना जो आपराधिक न्यायशास्त्र के खिलाफ है। दृष्टांत के माध्यम से, यह ध्यान दिया जा सकता है कि अभियुक्त द्वारा ली गई बहाना की याचिका की जांच आरोप तय करने के चरण में की जा सकती है यदि अभियुक्त की दलील को इस अच्छी तरह से तय किए गए प्रस्ताव के बावजूद स्वीकार किया जाता है कि इस तरह की याचिका को बनाए रखने के लिए मुकदमे में साक्ष्य का नेतृत्व करना अभियुक्त का काम है। यदि हम अभियुक्त की ओर से दिए गए तर्क को स्वीकार करते हैं तो अभियुक्त आरोप तय करने के चरण में ऐसी याचिका के प्रमाण में सामग्री और दस्तावेज पेश करने का हकदार होगा। एक सौ से अधिक वर्षों से अच्छी तरह से स्थापित कानून का इरादा कभी भी ऐसा नहीं रहा है।* इसी संदर्भ में धारा 227 द्वारा अभिनिर्धारित अभियुक्त की दलीलों की सुनवाई के प्रावधान को समझा जाना चाहिए। इसका मतलब केवल दायर मामले के रिकॉर्ड पर अभियुक्त की दलीलों को सुनना है। अभियोजन पक्ष और उसके साथ प्रस्तुत किए गए दस्तावेज और इससे अधिक कुछ नहीं। 'अभियुक्त की दलीलें सुनना' अभिव्यक्ति का अर्थ अभियुक्त को दी जाने वाली सामग्री दाखिल करने का अवसर नहीं हो सकता है और इस तरह तय किए गए कानून को बदला जा सकता है। *आरोप–पत्र तैयार करने की स्थिति में सुनवाई के दौरान अभियुक्त की दलीलें पुलिस द्वारा प्रस्तुत सामग्री तक ही सीमित होनी चाहिए।*

23. उपरोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप, हमारे विचार में, स्पष्ट रूप से कानून यह है कि आरोप तय करने या संज्ञान लेने के समय अभियुक्त को कोई सामग्री पेश करने का कोई अधिकार नहीं है।"

19. यहाँ तक कि रूमी धर बनाम पं. बंगाल राज्य [(2009) 6 एस. सी. सी. 364: (2009) 2 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 1074], जिस पर अपीलार्थियों के वकील द्वारा भरोसा रखा गया था, धारा 239 द०प्र०स० के तहत आरोपी व्यक्ति के आरोपमुक्त होने के चरण में लागू किए जाने वाले परीक्षण कोई अलग नहीं पाए गए। निष्कासन को आसानी से प्रोत्साहित करने के बजाय, न्यायालय ने माना कि अपराध के संबंध में एक मजबूत संदेह भी आरोप तय करने को सही ठहराने के लिए पर्याप्त होगा। न्यायालय ने टिप्पणी कीः (एससीसी पृष्ठ 369, कंडिका 17)

"*17.* द०प्र०स० की धारा 239 के संदर्भ में आरोपमुक्त करने के लिए दायर आवेदन पर विचार करते समय, यह विद्वान न्यायाधीश का काम था कि वह प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति के खिलाफ लगाए गए आरोपों के विवरण में जाए ताकि यह राय बनाई जा सके कि क्या कोई मामला उसके संबंध में एक मजबूत संदेह के रूप में बनाया गया है या नहीं, यह कानून की आवश्यकताओं को पूरा करेगा।"

20. इसी प्रभाव के लिए *भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल* [(1979) 3 एस. सी. सी. 4 में इस न्यायालय का निर्णय हैः 1979 एस. सी. सी. (आ.) 609] जहाँ यह न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के संदर्भ में इसी तरह के प्रश्न की जांच कर रहा था। कानूनी स्थिति का सारांश इस प्रकार दिया गया थाः (एस. सी. सी. पी. 9, पैरा 10)

"*10.* इस प्रकार, ऊपर उल्लिखित अधिकारियों पर विचार करने पर, निम्नलिखित सिद्धांत सामने आते हैंः

(1) संहिता की धारा 227 के अन्तर्गत आरोप तय करने के प्रश्न पर विचार करते समय न्यायाधीश को साक्ष्यों की छानबीन करने तथा उनका मूल्यांकन करने का निस्संदेह अधिकार है, ताकि यह पता लगाया जा सके कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नही।

(2) जहाँ न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री से अभियुक्त के विरुद्ध गंभीर संदेह प्रकट होता है, जिसे उचित रुप से स्पष्ट नही किया गया है,

वहां न्यायालय को आरोप निर्धारित करने तथा मुकदमा चलाने का पूर्ण अधिकार होगा।

(3) प्रथम दृष्टया मामला निर्धारित करने के लिए परीक्षण स्वाभाविक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा और सार्वभौमिक अनुप्रयोग का नियम निर्धारित करना मुश्किल है। हालांकि, यदि मोटे तौर पर दो विचार समान रूप से संभव हैं और न्यायाधीश का समाधान हो जाता है कि उसके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य अभियुक्त के खिलाफ कुछ संदेह को जन्म देते हुए लेकिन गंभीर संदेह को जन्म नहीं देते हैं, तो वह पूरी तरह से अभियुक्त को दोषमुक्त करने के अपने अधिकार के भीतर होगा।

(4) संहिता की धारा 227 के तहत अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए न्यायाधीश, जो वर्तमान संहिता के तहत एक वरिष्ठ और अनुभवी न्यायाधीश है, केवल एक डाकघर या अभियोजन पक्ष के मुखपत्र के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, लेकिन मामले की व्यापक संभावनाओं, साक्ष्य और दस्तावेजों के कुल प्रभाव पर विचार करना होगा। न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया, मामले में दिखाई देने वाली कोई भी बुनियादी दुर्बलताएँ आदि। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि न्यायाधीश को मामले के पक्ष और विपक्ष की बारी–बारी से जांच करनी चाहिए और सबूतों को ऐसे तौलना चाहिए जैसे कि वह मुकदमा चला रहा हो।"

9. उपरोक्त तथ्यात्मक और कानूनी चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, क्योंकि याचिकाकर्ता को आरटीजीएस (रियल टाइम ग्रॉस सेटलमेंट) के माध्यम से रु० 2,00,000– रुपये प्राप्त हुए है, जहां जांच के बाद पुलिस ने भा.दं.वि. की धारा 406 और 420 के तहत आरोप पत्र दाखिल किया है। तदनुसार, **शिवराज सिंह अहलावत मामले (उपरोक्त)** के कंडिका 15 से 20 का मार्गदर्शक नोट लेते हुए, दिनांक 25.01.2016 को दिया गया आक्षेपित आदेश कानून की नजर में गलत नही प्रतीत होता है, जैसा कि करगहर थाना कांड संख्या 170/2014 में पारित किया गया था, जो विद्वान अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट–X, सासाराम के समक्ष लंबित है, क्योंकि याचिका को खारिज करने के लिए पर्याप्त कारण और गंभीर संदेह मौजूद है, जिसमें द०प्र०स० की धारा 239 के तहत याचिकाकर्ता को आरोपमुक्त किया गया हैं।

10. तदनुसार, आवेदन खारिज किया जाता है।

11. इस फैसले की एक प्रति तत्काल विद्वान विचारण न्यायालय को भेजी जाए।

(चंद्र शेखर झा, न्यायमूर्ति)

एस. त्रिपाठी/–

खंडन (डिस्क्लेमर)– स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।